उत्साह

लेखक परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य जगत के प्रमुख निबंधकार एवं आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म 11 अक्टूबर सन् 1884 ई. को उ.प्र. के बस्ती जिले के अगौना नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. चंद्रबली शुक्ल था। प्रारंभिक शिक्षा हमीरपुर में हुई, बाद में मिर्ज़ापुर [उ.प्र.] से मिडिल और एण्ट्रेन्स परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। 26 वर्ष की उम्र में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी शब्द- सागर के सहकारी संपादक नियुक्त हुए। यहाँ पर आपकी साहित्यिक -प्रतिभा को विकसित होने का अवसर मिला। आपने अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया।

आप काशी हिंदू विश्व-विद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1937 तक हिंदी-विभाग के विभागाध्यक्ष रहे। 2 फरवरी सन् 1940 ई. को यह साहित्य मनीषी हम सबसे विदा ले गया।

शुक्ल जी की प्रमुख रचनाओं में निबंध संग्रह-चिंतामणि, हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी काव्य में रहस्यवाद, बुद्ध चरित, रस मीमांसा सैद्धांन्तिक आदि प्रमुख हैं।

सूर, तुलसी और जायसी पर केंद्रित उनकी आलोचनाएँ 'त्रिवेणी' नामक संग्रह में संगृहीत हैं।

केंद्रीय भाव:- यह निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध-संग्रह 'चिंतामणि-भाग-1' से लिया गया है। आचार्य शुक्ल मानवीय विचारों, संवेदनाओं और मनोविकारों के कुशल चितेरे हैं।

यह एक विचारोत्तेजक और प्रेरणाप्रद निबंध है। इसमें शुक्लजी ने उत्साह और कर्म के परस्पर संबंध को स्पष्ट किया है। यह एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति में कठिन से कठिन कार्य में प्रवृत्त होने की उमंग और आनंद बनाए रखता है। बिना आनंद के किसी कष्टप्रद कार्य में प्रवृत्त होना साहस है उत्साह नहीं। उत्साह एक सकारात्मक भाव है। कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उत्साह एक अनिवार्य भाव तथ्य है। उत्साह में मानसिक और शारीरिक तत्परता भी आवश्यक है। इस निबंध में विचारों की गहराई के साथ-साथ कही -कहीं पर स्वार्थ साधकों पर किया गया कटाक्ष विनोद उत्पन्न करता है।

दु:ख के वर्ग में जो स्थान भय का है, वही स्थान आनंद-वर्ग में उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के नियम से विशेष रूप में दुखी और कभी-कभी उस स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान भी होते हैं। उत्साह में हम आने वाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निश्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म-सुख की उमंग से अवश्य प्रयत्नवान होते हैं। कष्ट या हानि सहने के साथ-साथ कर्म में प्रवृत्त होने के आनंद का योग रहता है। साहस-पूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है। कर्म-सौंदर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।

जिन कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है उन सबके प्रति उत्कण्ठापूर्ण आनंद उत्साह के अंतर्गत लिया जाता है। कष्ट या हानि के भेद के अनुसार उत्साह के भी भेद हो जाते हैं। साहित्य-मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर, इत्यादि भेद किए हैं। इनमें सबसे प्राचीन और प्रधान युद्ध वीरता है, जिसमें आघात, पीड़ा क्या मृत्यु की परवाह नहीं रहती। इस प्रकार की वीरता का प्रयोजन अत्यंत प्राचीन काल से चला आ रहा है, जिसमें साहस और प्रयत्न दोनों चरम उत्कर्ष पर पहुँचते हैं। पर केवल कष्ट या पीड़ा सहन करने के साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुरित नहीं होता। उसके साथ आनंद-पूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा का योग चाहिए। बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं। इसी प्रकार चुपचाप, बिना हाथ-पैर हिलाए, घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जाएगी। ऐसे साहस और धीरता को उत्साह के अंतर्गत तभी ले सकते हैं जब कि साहसी या धीर उस काम को आनंद के साथ करता चला जाएगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं।

साहित्यिक-दृष्टि से शुक्ल जी की भाषा अत्यंत परिष्कृत और संस्कृतनिष्ठ है। जिसमें उर्दू, फारसी के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। शुक्ल जी ने प्रमुख-रूप से समीक्षात्मक, सूत्रात्मक और वर्णनात्मक शैली को अपनाया है। रचनाओं में मर्यादित हास्य-व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। भावों के अनुकूल भाषा की कसावट एवं विषय का समुचित निर्वाह और प्रतिपादन अधिक प्रभावी बन पड़ा है।

आधुनिक निबंध साहित्य में शुक्ल जी युग प्रवर्तक साहित्यकार हैं। वे मौलिक चिंतक, गंभीर-विचारक और समालोचक के रूप में चिर-स्मरणीय रहेंगे।

सारांश यह कि आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा में ही उत्साह का दर्शन होता है, केवल कष्ट सहने के निश्चेष्ट साहस में नहीं। धृति और साहस दोनों का उत्साह के बीच संचरण होता है।

उत्साह की गिनती अच्छे गुणों में होती है। किसी भाव के अच्छे या बुरे होने का निश्चय अधिकतर उसकी प्रवृत्ति के शुभ या अशुभ परिणाम के विचार से होता है। वही उत्साह जो कर्तव्य कर्मों के प्रति इतना सुंदर दिखाई पड़ता है, अकर्तव्य कर्मों की ओर होने पर वैसा श्लाघ्य नहीं प्रतीत होता। आत्मरक्षा, पर रक्षा, देश-रक्षा आदि के निमित्त साहस की जो उमंग देखी जाती है उसके सौंदर्य को पर-पीड़न, डकैती आदि कर्मों का साहस कभी नहीं पहुँच सकता। यह बात होते भी विशुद्ध उत्साह या साहस की प्रशंसा संसार में थोड़ी-बहुत होती ही है। अत्याचारियों या डाकुओं के शौर्य और साहस की कथाएँ भी लोग तारीफ़ करते हुए सुनते हैं।

अब तक उत्साह का प्रधान रूप ही हमारे सामने रहा, जिसमें साहस का पूरा योग रहता है। पर कर्ममात्र के संपादन में जो तत्परतापूर्ण आनंद देखा जाता है वह उत्साह ही कहा जाता है। सब कामों में साहस अपेक्षित नहीं होता, पर थोड़ा-बहुत आराम विश्राम, सुभीते आदि का त्याग सबमें करना पड़ता है, और कुछ नहीं तो उठकर बैठना, खड़ा होना या दस-पाँच क़दम चलना ही पड़ता है। जब तक आनंद का लगाव किसी क्रिया, व्यापार या उसकी भावना के साथ नहीं दिखाई पड़ता तब तक उसे उत्साह की संज्ञा प्राप्त नहीं होती। यदि किसी प्रिय मित्र के आने का समाचार प्राप्त कर हम चुपचाप ज्यों के त्यों आनंदित होकर बैठे रह जाएँ या थोड़ा हँस भी दें तो यह हमारा उत्साह नहीं कहा जाएगा। हमारा उत्साह तभी कहा जाएगा जब हम अपने मित्र का आगमन सुनते ही उठ खड़े होंगे। उससे मिलने के लिए दौड़ पड़ेंगे और उसके ठहरने आदि के प्रबंध में प्रसन्न-मुख इधर-उधर आते-जाते दिखाई देंगे। प्रयत्न और कर्म संकल्प उत्साह नामक आनंद के नित्य लक्षण है। प्रत्येक कर्म में थोड़ा या बहुत बुद्धि का योग भी रहता है। कुछ कर्मों में तो बुद्धि की तत्परता और शरीर की तत्परता दोनों बराबर साथ-साथ चलती हैं। उत्साह की उमंग जिस प्रकार हाथ-पैर चलवाती है उसी प्रकार बुद्धि से भी काम कराती है।

थोड़ा यह भी देखना चाहिए कि उत्साह में ध्यान किस पर रहता है। कर्म पर, उसके फल पर अथवा व्यक्ति या वस्तु पर? हमारे विचार में उत्साही वीर का ध्यान आदि से अंत तक पूरी कर्म-शृंखला पर से होता हुआ उसकी सफलता रूपी समाप्ति तक फैला रहता है। इसी ध्यान से जो आनंद की तरंगें उठती हैं वे ही सारे प्रयन्न को आनंदमय कर देती हैं। युद्ध-वीर में विजेतव्य को आलंबन कहा गया है। उसका अभिप्राय यही है कि विजेतव्य कर्म प्रेरक के रूप में वीर के ध्यान में स्थित रहता है, वह कर्म स्वरूप का भी निर्धारण करता है। पर आनंद और साहस के मिश्रित भाव का सीधा लगाव उसके साथ नहीं रहता। सच पूछिए तो वीर के उत्साह का विषय विजय-विधायक कर्म या युद्ध ही रहता है। दान-वीर और धर्मवीर पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दान दयावश, श्रद्धावश या कीर्ति-लोभवश दिया जाता है। यदि श्रद्धा-वश दान दिया जा रहा है तो दान-पात्र वास्तव में श्रद्धा का और यदि दया-वश दिया जा रहा है तो पीड़ित यथार्थ में दया का विषय या आलंबन ठहरता है। अत: उस श्रद्धा या दया की प्रेरणा से जिस कठिन या दुस्साध्य कर्म की प्रवृत्ति होती है उसी की ओर उत्साही का साहसपूर्ण आनंद उन्मुख कहा जा सकता है। अत: और रसों में आलंबन का स्वरूप जैसा निर्दिष्ट रहता है वैसा वीररस में नहीं। बात यह है कि उत्साह एक यौगिक भाव है जिसमें साहस और आनंद का मेल रहता है।

जिस व्यक्ति या वस्तु पर प्रभाव डालने के लिए वीरता दिखाई जाती है उसकी ओर उन्मुख कर्म होता है और कर्म की ओर उन्मुख उत्साह नामक भाव होता है। सारांश यह है कि किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ उत्साह का सीधा लगाव नहीं होता। समुद्र लाँघने के लिए उत्साह के साथ हनुमान उठे हैं उसका कारण समुद्र नहीं-समुद्र लाँघने का विकट कर्म

है। कर्म भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है, वस्तु या व्यक्ति की भावना नहीं।

किसी कर्म के संबंध में जहाँ आनंदपूर्ण तत्परता दिखाई पड़ी कि हम उसे उत्साह कह देते हैं कर्म के अनुष्ठान में जो आनंद होता है उसका विधान तीन रूपों में दिखाई पड़ता है–

1. कर्म–भावना से उत्पन्न
2. फल–भावना से उत्पन्न और
3. आगंतुक, अर्थात् विषयांतर से प्राप्त।

फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है; चित्त में यही आता है कि कर्म बहुत सरल करना पड़े और फल बहुत–सा मिल जाए। श्रीकृष्ण ने कर्म–मार्ग से फलासक्ति की प्रबलता हटाने का बहुत ही स्पष्ट उपदेश दिया, पर उनके समझाने पर भी भारतवासी इस वासना से ग्रस्त होकर कर्म से तो उदास हो बैठे और फल के इतने पीछे पड़े कि गरमी में ब्राह्मण को एक पेठा देकर पुत्र की आशा करने लगे, चार आने रोज का अनुष्ठान करा के व्यापार में लाभ, शत्रु पर विजय, रोग से मुक्ति, धन–धान्य की वृद्धि तथा और भी न जाने क्या–क्या चाहने लगे। आसक्ति प्रस्तुत या उपस्थित वस्तु में ही ठीक कही जा सकती है। कर्म सामने उपस्थित रहता है। इससे आसक्ति उसी में चाहिए, फल दूर रहता है, इससे उसकी ओर कर्म का लक्ष्य काफी है। जिस आनंद से कर्म की उत्तेजना होती हैऔर जो आनंद कर्म करते समय तक बराबर चला चलता है उसी का नाम उत्साह है।

कर्म के मार्ग पर आनंदपूर्वक चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अन्तिम फल तक न भी पहुँचे तो भी उसकी दशा कर्म न करने वाले की अपेक्षा अधिकतर अवस्थाओं में अच्छी रहेगी, क्योंकि एक कर्म–काल में उसका जीवन बीता, संतोष या आनंद में बीता, उसके उपरांत फल की अप्राप्ति पर भी उसे यह पछतावा न रहा कि मैंने प्रयत्न नहीं किया। फल पहले से कोई बना–बनाया पदार्थ नहीं होता। अनुकूल प्रयत्न–कर्म के अनुसार, उसके एक–एक अंग की योजना होती है। बुद्धि द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित की हुई व्यापार–परम्परा का नाम ही प्रयत्न है। किसी मनुष्य के घर का कोई प्राणी बीमार है। वह वैद्यों के यहाँ से जब तक औषधि ला–लाकर रोगी को देता जाता है और इधर–उधर दौड़–धूप करता जाता है तब तक उसके चित्त में जो संतोष रहता है प्रत्येक नए उपचार के साथ जो आनंद का उन्मेष होता रहता है– यह उसे कदापि न प्राप्त होता, यदि वहाँ रोता हुआ बैठा रहता। प्रयत्न की अवस्था में उसके जीवन का जितना अंश संतोष, आशा और उत्साह में बीता, अप्रयत्न की दशा में उतना ही अंश केवल शोक और दु:ख में कटता। इसके अतिरिक्त रोगी के न अच्छे होने की दशा में भी वह आत्म–ग्लानि के उस कठोर दु:ख से बचा रहेगा जो उसे जीवनभर यह सोच–सोचकर होता कि मैंने पूरा प्रयत्न नहीं किया।

कर्म में आनंद अनुभव करनेवालों ही का नाम कर्मण्य है। धर्म और उदारता के उच्च कर्मों के विधान में ही एक ऐसा दिव्य आनंद भरा रहता है कि कर्ता को वे कर्म ही फल–स्वरूप लगते हैं। अत्याचार का दमन और क्लेश का शमन करते हुए चित्त में जो उल्लास और तुष्टि होती है वही लोकोपकारी कर्म–वीर का सच्चा सुख है। उसके लिए सुख तब तक के लिए रुका नहीं रहता जब तक कि फल प्राप्त न हो जाए; बल्कि उस समय से थोड़ा–थोड़ा करके मिलने लगा है जब से वह कर्म की ओर हाथ बढ़ाता है।

कभी–कभी आनंद का मूल विषय तो कुछ और रहता है, पर उस आनंद के कारण एक ऐसी स्फूर्ति उत्पन्न होती है जो बहुत से कामों की ओर हर्ष के साथ अग्रसर करती है। इसी प्रसन्नता और तत्परता को देख लोग कहते हैं कि वे काम बड़े उत्साह से किए जा रहे हैं। यदि किसी मनुष्य को बहुत–सा लाभ हो जाता है या उसकी कोई बड़ी भारी कामना पूर्ण हो जाती है तो जो काम उसके सामने आते हैं, उन सबको वह बड़े हर्ष और तत्परता के साथ करता है। उसके इस हर्ष और तत्परता को भी लोग उत्साह ही कहते हैं। इसी प्रकार किसी उत्तम फल या सुख प्राप्ति की आशा या निश्चय से उत्पन्न आनंद, फलोन्मुखी प्रयत्नों के अतिरिक्त और दूसरे व्यापारों के साथ संलग्न होकर, उत्साह के रूप में दिखाई

पड़ता है। यदि हम किसी ऐसे उद्योग में लगे हैं जिससे आगे चलकर हमें बहुत लाभ या सुख की आशा है तो हम उस उद्योग को तो उत्साह के साथ करते ही हैं, अन्य कार्यों में प्राय: अपना उत्साह दिखा देते हैं।

यह बात उत्साह में नहीं, अन्य मनोविकारों में भी बराबर पाई जाती है। यदि हम किसी बात पर क्रुद्ध बैठे हैं और इसी बीच में कोई दूसरा आकर हमसे कोई बात सीधी तरह भी पूछता है तो भी हम उस पर झुँझला उठते हैं। इस झुँझलाहट का न तो कोई निर्दिष्ट कारण होता है न उद्देश्य । यह केवल क्रोध की स्थिति –व्याघात को रोकने की क्रिया है, क्रोध की रक्षा का प्रयत्न है। इस झुँझलाहट द्वारा हम यह प्रकट करते हैं कि हम क्रोध में हैं और क्रोध ही में रहना चाहते हैं। क्रोध को बनाये रखने के लिए हम उन बातों से भी क्रोध ही संचित करते हैं जिनसे दूसरी अवस्था में हम विपरीत भाव प्राप्त करते। इसी प्रकार यदि हमारा चित्त किसी विषय में उत्साहित रहता है तो हम अन्य विषयों में भी अपना उत्साह दिखा देते हैं। यदि हमारा मन बढ़ा हुआ रहता है तो हम बहुत से काम प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी बात का विचार करके सलाम–साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. उत्साह के बीच किनका संचरण होता है ?
2. लेखक ने वीरों के कितने प्रकार बताए हैं?
3. प्रयत्न किसे कहते हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रत्येक कर्म में किस तत्व का योग अवश्य होता है?
2. फलासक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. कौन–सी भावना उत्साह उत्पन्न करती है? उदाहरण सहित लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भय और उत्साह में क्या अंतर है?
2. किसी कर्म के अच्छे या बुरे होने का निश्चय किस आधार पर होता है? उत्साह के संदर्भ में सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।
3. उत्साह का अन्य कर्मों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. इन गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   (अ) आसक्ति प्रस्तुत ..... का नाम उत्साह है।

   (ब) धर्म और उदारता ..... सच्चा सुख है।

निम्नलिखित वाक्यों का भाव स्पष्ट कीजिए–

उपर्युक्त वाक्यों का भाव स्पष्ट कीजिए।

5. अ– साहसपूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है।

   ब– कर्म में आनंद उत्पन्न करने वालों का नाम ही कर्मण्य है ।

भाषा अध्ययन

1. **निम्नलिखित शब्दों के हिंदी पर्याय लिखिए** –

   हाकिम, मिजाज , मुलाकात, अर्दली, सलाम

2. **निम्नलिखित शब्दों के विलोम लिखिए** –

   भय, दु:ख, हानि, शत्रु, उपस्थित

3. **निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग छाँटकर लिखिए** –

   विशेष, आघात, उत्कर्ष, अप्राप्ति, विशुद्ध

ध्यान से पढ़िए –

अ. साहित्य मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर, इत्यादि भेद किए हैं।

आ. उससे मिलने के लिए दौड़ पड़ेंगे और उसके ठहरने आदि के प्रबंध में प्रसन्न-मुख, इधर-उधर आते-जाते दिखाई देंगे।

इ. सब कामों में साहस अपेक्षित नहीं होता, पर थोड़ा-बहुत आराम- विश्राम आदि का प्रयास करना पड़ता है और दस-पाँच क़दम चलना ही पड़ता है।

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों के मध्य में (-) चिह्न का प्रयोग किया गया ।

आइए जानें –

दो पृथक शब्दों को जोड़ने वाले चिह्न (-)को योजक चिह्न कहते हैं।

इसे सामासिक या विभाजक चिह्न भी कहते हैं यदि योजक सामासिक या विभाजक चिह्न का ठीक-ठीक ध्यान न रखा जाए तो अर्थ और उच्चारण से संबद्ध अनेक प्रकार की त्रुटियाँ हो सकती हैं। जैसे- भू-तत्व का अर्थ है भूमि से संबंधित तत्व यदि भूतत्व (बिना योजक चिह्न) लिखा जाए तो भूत शब्द का भाव वाचक संज्ञा रूप बन जाएगा।

अत: योजक चिह्न (-) का प्रयोग सावधानी से करना आवश्यक है।

योजक चिह्न का प्रयोग –

योजक चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों में होता है –

1. तत्पुरुष तथा द्वंद्व समास के दोनों पदों के मध्य, जैसे- गीत-संगीत, माता-पिता, लाभ- हानि।
2. मध्य के अर्थ में, जैसे - कृष्ण-सुदामा-चरित, रावण-अंगद-संवाद।
3. शब्दों के द्वित्व रूपों में, जैसे - साथ-साथ, कभी-कभी।
4. तुलना सूचक शब्दों के बीच, जैसे- बहुत-सा, राम- सा भाई।
5. विभिन्न शब्द युग्मों में, जैसे- थोड़ी-बहुत, भीड़-भाड़।
6. संख्याओं को शब्दों में लिखते समय जैसे-दस-पाँच, तीन-चौथाई।

4. पाठ में आए हुए विभिन्न योजक शब्दों को छाँटकर लिखिए।

वाक्य -रचना की अशुद्धियाँ -

वाक्य- रचना की अशुद्धियों का मुख्य कारण व्याकरण के नियमों का सही रूप में न जानना है। इस कारण व्यक्ति अनेक प्रकार की त्रुटियाँ करता रहता है। कभी-कभी व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध होने पर भी कुछ अशुद्ध वाक्य भाषा में प्रयुक्त होने लगते हैं। उन्हें मानक-अमानक के आधार पर शुद्ध-अशुद्ध ठहराया जाता है ।

वाक्य- रचना की अशुद्धियों में यहाँ केवल पदक्रम संबंधी अशुद्धियों को दूर करने का विचार किया जा रहा है।

पदक्रम संबंधी नियम -

1. वाक्य में पहले कर्ता, फिर कर्म तथा अन्त में क्रिया आती है ।

   जैसे - बालक दूध पीता है।

2. यदि क्रिया अकर्मक है तो वाक्य में पहले कर्ता फिर क्रिया आती है।

   जैसे- बालिका सोती है।

3. विस्मयादि बोधक शब्द वाक्य के आरंभ में आते हैं।

   जैस - हाय! वह मर गया।

4. जहाँ प्रश्नवाचक वाक्यों हाँ/नहीं उत्तर वाले प्रश्नों में 'क्या' प्रश्नवाचक शब्द वाक्य के आरंभ में आते हैं तथा शेष प्रश्नवाचक शब्द प्राय: वाक्य के मध्य में आते हैं

   जैसे - क्या तुम मुंबई जाओगे ? (हाँ/ना) दरवाजे पर कौन खड़ा है?

5. क्रिया-विशेषण शब्द, क्रिया के पूर्व आते हैं।

   जैसे- वह धीरे-धीरे लिख रही है।

5 निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध रूप में लिखिए-

अ. आप पुस्तक क्या पढ़ेंगे?

आ. कितना वीभत्स दृश्य है, ओह! यह!

इ. बीमार को शुद्ध भैंस का दूध पिलाइए।

ई. एक फूलों की माला लाओ ।

उ. छब्बीस जनवरी का भारत के इतिहास में बहुत महत्व है।

ऊ. यह बहुत सुन्दर चित्र है ।

योग्यता -विस्तार

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मनोभावों पर अनेक निबंध लिखे हैं।

   आप उन निबंधों को खोजकर पढ़िए।

2. अपने आस-पास के किसी व्यक्ति के उत्साहपूर्ण साहसिक कार्य की कक्षा में चर्चा कीजिए।

3. साहसिक कार्य करने वाले पुरस्कृत बच्चों की सूची बनाइए।

4. 'उत्साह', 'धैर्य', 'साहस' आदि विषयों पर निबन्धात्मक शैली में अपने विचार लिखिए।

शब्दार्थ

कर्म सौंदर्य = कार्य की सुंदरता, ***श्लाघ्य*** = प्रशंसनीय, ***साहित्य - मीमांसक*** =साहित्य की मीमांसा व्याख्या करने वाला, ***स्फुरित*** = फड़कना, ***धीरता*** = धैर्य, मन की स्थिरता, ***धृति*** =धैर्य, धारण करने का भाव, ***विजेतव्य*** =विजय योग्य, ***आलंबन*** = सहारा, आधार, ***दुस्साध्य*** = जिसे पाना कठिन हो, ***उन्मुख*** =उत्सुक, ***निर्दिष्ट*** = निर्देशानुसार, ***अनुष्ठान*** = पूजा-पाठ, व्रत, संकल्प पूर्वक किया गया कार्य, ***विषयांतर*** = विषय परिवर्तन, ***आसक्ति*** = मोह, इच्छा, ***लाघव*** = कौशल, ***फलासक्ति*** =फल की इच्छा, ***आत्म-ग्लानि*** = मन ही मन पछतावा, ***फलोन्मुख*** = फल प्राप्ति का उत्सुक, इच्छुक, ***कर्मण्य*** = कर्म करने वाला, ***दिव्य आनंद*** = दैवीय सुख, ***शमन*** = शांत करना, ***लोकोपकारी*** = संसार की भलाई।

* * *